

## शुद्धात्मशतक

(१)

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण ।  
चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स ॥  
परद्रव्य को परित्याग पाया ज्ञानमय निज आतमा ।  
शतवार उनको हो नमन निष्कर्ष जो परमातमा ॥

जिस देव ने सम्पूर्ण परद्रव्यों को छोड़कर ज्ञानमय निज भगवान आत्मा उपलब्ध किया है और कर्मों का नाश किया है, उस देव के लिए बारम्बार नमस्कार हो ।

(२)

परदव्वरओ बज्झदि बिरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं ।  
एसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स ॥  
परद्रव्य में रत बंधे और विरक्त शिवरमणी बरे ।  
जिनदेव का उपदेश बंध-अबंध का संक्षेप में ॥

परद्रव्य में रत जीव विविध कर्मों से बंधता है और परद्रव्य विरक्त मुक्त होता है; बंध और मोक्ष के सम्बन्ध में जिनेन्द्र भगवान का संक्षेप में यही उपदेश है ।

(३)

परदवादो सुगई सइव्वादो हु सुगई होइ ।  
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरह इयरम्भि ॥  
परद्रव्य से हो दुर्गती निजद्रव्य से होती सुगति ।  
यह जानकर रति करो निज में अर करो पर से विरति ॥

परद्रव्य को अपना जानने, मानने एवं उसमें ही रमने से दुर्गति (चतुर्गति परिभ्रमण) होती है और स्वद्रव्य में अपनापन स्थापित करने से, उसे ही अपना जानने, मानने एवं उसमें ही जमने रमने से सुगति (पंचमगतिमोक्ष) होती है, ऐसा जानकर परद्रव्य से विराम लेकर स्वद्रव्य में रति करो ।

(४)

सहव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हबेइ णियमेण ।  
सम्मत्तपरिणदो उण खबेइ दुट्ठकम्भाइं ॥  
नित नियम से निजद्रव्य में रत श्रमण सम्यकवंत हैं ।  
सम्यक्त्व परिणत श्रमण ही क्षय करे करमानंत हैं ॥

जो श्रमण स्वद्रव्य में रत हैं, रुचिवंत हैं; वे नियम से सम्यक्त्व सहित हैं । सम्यक्त्व सहित वे श्रमण दुष्ट अष्ट कर्मों का नाश करते हैं ।

तात्पर्य यह है कि अपने आत्मा में अपनापन स्थापित कर अपनी आत्मा में लीन हो जाने वाले सम्यग्दृष्टी धर्मात्मा श्रमण आठकर्मों का नाश करते हैं, सिद्धदशा को प्राप्त करते हैं ।

(५)

जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू ।  
मिच्छत्तपरिणदो पुण बज्झदि दुट्ठकम्मेहिं ॥  
किन्तु जो परद्रव्यरत वे श्रमण मिथ्यादृष्टि हैं ।  
मिथ्यात्व परिणत वे श्रमण दुष्टाष्ट कर्मों से बंधें ॥

जो साधु परद्रव्य में रत हैं, वह मिथ्यादृष्टि हैं । मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप से परिणत वह श्रमण दुष्ट अष्टकर्मों से बंधता है ।

३. अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा १६

४. अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा १४

५. अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा १५

(६)

आदसहावादणं सच्चित्ताचित्रमिस्सियं हवदि ।  
तं परदव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरिसीहिं ॥  
जो आतमा से भिन्न चित्ताचित्त एवं मिश्र हैं ।  
उन सर्व द्रव्यों को अरे परद्रव्य जिनवर ने कहा ॥

निज भगवान आत्मा से भिन्न जो भी स्त्री-पुत्रादि व रागादि सचित्त, धन-धान्यादि अचित्त एवं सेनादि मिश्र पदार्थ हैं; वे सभी परद्रव्य हैं - ऐसा सत्यवादी एवं सर्वदर्शी जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ।

(७)

दुट्ठकम्मरहियं अणोबमं णाणविग्गहं णिच्चं ।  
सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवदि सहव्वं ॥  
दुष्टाष्ट कर्मों से रहित जो ज्ञानविग्रह शुद्ध है ।  
वह नित्य अनुपम आतमा स्वद्रव्य जिनवर ने कहा ॥

दुष्ट-अष्टकर्मों से रहित, अनुपम, ज्ञानशरीरी, नित्य, शुद्ध आत्मा को ही जिनेन्द्र भगवान ने स्वद्रव्य कहा है ।

(८)

णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो ।  
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥  
निजद्रव्य रत यह आतमा ही योगि चारित्रवंत है ।  
यह ही बने परमात्मा परमार्थनय का कथन यह ॥

निश्चयनय का स्पष्ट कहना है कि जो अपने आत्मा में लीन हो जाता है, वह स्फुरितचरित्र योगी निर्वाण को प्राप्त करता है ।

६. अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा १७

७. अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा १८

८. अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा ८३

(९)

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।  
 णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मं अणेयविहं ॥  
 परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमे ।  
 बहुभाँति पुद्गल कर्म को ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥

ज्ञानी जीव अनेक प्रकार से पौद्गलिक कर्मों को जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्य की पर्याय में परिणमित नहीं होता, उसे ग्रहण नहीं करता और उसरूप उत्पन्न नहीं होता ।

(१०)

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।  
 णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मप्फलमणंतं ॥  
 परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमे ।  
 पुद्गलकरम का नंतफल ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥

ज्ञानी जीव पुद्गल द्रव्य के अनन्त फल को जानता हुआ भी परमार्थ से परद्रव्य की पर्याय में परिणमित नहीं होता, उसे ग्रहण नहीं करता और उसरूप उत्पन्न नहीं होता ।

(११)

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।  
 णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मं अणेयविहं ॥  
 परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमे ।  
 बहुभाँति पुद्गल कर्म को ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥

ज्ञानी जीव अनेक प्रकार से पौद्गलिक कर्मों को जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्य की पर्याय में परिणमित नहीं होता, उसे ग्रहण नहीं करता और उसरूप उत्पन्न नहीं होता ।

(१२)

को णाम भणिज्ज बुहो णादुं सव्वे पराइए भावे ।  
 मज्झमिणं ति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ॥  
 निज आतमा को शुद्ध अर पररूप पर को जानता ।  
 है कौन बुध जो जगत में परद्रव्य को अपना कहें ॥  
 परपदार्थों को पर एवं निज शुद्ध आत्मा को निज जानता हुआ ऐसा कौन ज्ञानी पुरुषों होगा जो परपदार्थों को 'यह मेरा है' - ऐसा कहेगा?  
 तात्पर्य यह है कि ज्ञानी पुरुषों की परपदार्थों में अहंबुद्धि नहीं होती ।

(१२)

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं ।  
 अप्पाणमप्पणो परिगहं तु णियदं वियाणंतो ॥  
 आतमा ही आतमा का परीग्रह - यह जानकर ।  
 'परद्रव्य मेरा है' - बताओ कौन बुध ऐसा कहे? ॥  
 अपने आत्मा को ही नियम से अपना परिग्रह जानता हुआ कौन ज्ञानी यह कहेगा कि यह परद्रव्य मेरा द्रव्य है? तात्पर्य यह है कि कोई भी ज्ञानी धर्मात्मा परद्रव्य में अपनापन स्थापित नहीं करता ।

(१४)

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज ।  
 णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ ॥  
 यदि परीग्रह मेरा बने तो मैं अजीव बनूँ अरे ।  
 पर मैं तो ज्ञायकभाव हूँ इसलिए पर मेरे नहीं ॥  
 यदि परद्रव्य रूप परिग्रह मेरा हो तो मैं अजीवपने को प्राप्त हो जाऊँ,  
 परन्तु मैं तो ज्ञाता ही हूँ; अतः परिग्रह मेरा नहीं है ।

(१५)

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं ।  
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि हु ण परिग्गहो मज्झ ॥  
छिद जाय या ले जाय कोइ अथवा प्रलय को प्राप्त हो ।  
जावे चला चाहे जहाँ पर परीग्रह मेरा नहीं ॥

छिद जावे, भिद जावे अथवा कोई ले जावे, चाहे जहाँ चला जावे,  
प्रलय ही क्यों न हो जावे; मैं उसकी क्यों चिन्ता करूँ; क्योंकि निश्चय से  
वह परिग्रह मेरा नहीं है ।

(१६)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे धम्मं ।  
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणणो तेण सो होदि ॥  
है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे धर्म को ।  
है परीग्रह न धर्म का वह धर्म का ज्ञायक रहे ॥

अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी धर्म (पुण्य) चाहता  
नहीं है; अतः वह धर्म का परिग्रही नहीं है, वह तो धर्म का ज्ञायक ही है ।

(१७)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी णेच्छदि अधम्मं ।  
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणणो तेण सो होदि ॥  
है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे अधर्म को ।  
है परिग्रह न अधर्म का वह अधर्म का ज्ञायक रहे ॥

अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी अधर्म (पाप) को  
चाहता नहीं है; अतः वह अधर्म का परिग्रही नहीं है, वह तो अधर्म का  
ज्ञायक ही है ।

(१८)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे असणं ।  
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणणो तेण सो होदि ॥  
है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे असन को ।  
है परिग्रह न असन का वह असन का ज्ञायक रहे ॥

अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी भोजन को चाहता  
नहीं है; अतः वह भोजन का परिग्रही नहीं है, वह तो वह भोजन का  
ज्ञायक ही है ।

(१९)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे पाणं ।  
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणणो तेण सो होदि ॥  
है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे पेय को ।  
है परिग्रह न पेय का वह पेय का ज्ञायक रहे ॥

अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी पान (पेय) को चाहता  
नहीं है; अतः वह पेय का परिग्रही नहीं है, वह तो पेय का ज्ञायक ही है ।

(२०)

एमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णेच्छदे णाणी ।  
जाणगभावो णियदे णीरालंबो दु सव्वत्थ ॥  
इत्यादिक विध-विध भाव जो ज्ञानी न चाहे सभी को ।  
सर्वत्र ही वह निरालम्बी नियत ज्ञायकभाव है ॥

इत्यादिक अनेक प्रकार के सभी भावों को ज्ञानी चाहता नहीं है;  
इसलिए वह नियम से सर्वत्र निरालम्बी ज्ञायकभाव ही है ।

(२१)

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं ।  
 ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को ॥  
 उदय कर्मों के विविध-विध सूत्र में जिनवर कहे ।  
 किन्तु वे मेरे नहीं मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ॥  
 जिनेन्द्र भगवान ने कर्मों के उदय का विपाक (फल) अनेक प्रकार  
 का कहा है; किन्तु वे मेरे स्वभाव नहीं है, मैं तो एक ज्ञायकभाव ही हूँ ।

(२२)

पोग्गलकम्मं रागो तस्य विवागोदओ हवदि एसो ।  
 ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो हु अहमेक्को ॥  
 पुद्गल करम है राग उसके उदय ये परिणाम हैं ।  
 किन्तु ये मेरे नहीं मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ॥  
 राग पुद्गलकर्म है, उसके विपाकरूप उदय ये भाव हैं और ये भाव  
 मेरे नहीं है; क्योंकि मैं तो निश्चय से एक ज्ञायकभाव ही हूँ ।

(२३)

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं ।  
 बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभाव संजुत्तो ॥  
 अज्ञानमोहितमती बहुविध भाव से संयुक्त जिय ।  
 अबद्ध एवं बद्ध पुद्गल द्रव्य को अपना कहे ॥  
 जिसकी मति अज्ञान से मोहित है और जो राग-द्वेष-मोह आदि  
 अनेक भावों से युक्त है - ऐसा जीव कहता है कि ये शरीरादि बद्ध और  
 धन-धान्यादि अबद्ध पुद्गल द्रव्य मेरे हैं ।

(२४)

सव्वणहुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं ।  
 कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं ॥  
 सर्वज्ञ ने देखा सदा उपयोग लक्षण जीव यह ।  
 पुद्गलमयी हो किसतरह किसतरह तू अपना कहे? ॥  
 उसे समझाते हुए आचार्य देव कहते हैं कि सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान  
 द्वारा देखा गया जो सदा उपयोग लक्षण वाला जीव है, वह पुद्गलद्रव्यरूप  
 कैसे हो सकता है, जिससे कि तू यह कह सके कि यह पुद्गलद्रव्य मेरा है ।

(२५)

जदि सो पोग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं ।  
 तो सक्को वत्तुं जे मज्झमिणं पोग्गलं दव्वं ॥  
 जीवमय पुद्गल तथा पुद्गलमयी हो जीव जब ।  
 ये मेरे पुद्गल द्रव्य हैं - यह कहा जा सकता है तब ॥  
 यदि जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप हो जाय और पुद्गलद्रव्य जीवरूप हो  
 जाय तो तू कह सकता है कि यह पुद्गलद्रव्य मेरा है ।

(२६)

एदेहिं य सम्बन्धो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो ।  
 ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा ॥  
 दूध-पानी की तरह सम्बन्ध इनका जानना ।  
 उपयोगमय इस जीव के परमार्थ से ये हैं नहीं ॥  
 इन वर्णादिक भावों के साथ जीव का संबंध दूध और पानी की तरह  
 एक क्षेत्रावगाह रूप संयोग सम्बन्ध है - ऐसा जानना चाहिए । ये सभी  
 भाव जीव के नहीं हैं; क्योंकि जीव में उनसे उपयोग गुण अधिक हैं ।

(२७)

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी ।  
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई ॥  
पथिक लुटते देखकर पथ लुट रहा जग-जन कहें ।  
पर पथ तो लुटता है नहीं बस पथिक ही लुटते रहें ॥

जिसप्रकार पथिक को लुटता हुआ देखकर व्यवहारीजन कहते हैं कि यह मार्ग लुटता है; किन्तु परमार्थ से विचार किया जाय तो मार्ग नहीं लुटता, मार्ग में जाता हुआ मनुष्य ही लुटता है ।

(२८)

तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं ।  
जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो ॥  
उस ही तरह रंग देखकर जड़कर्म अर नोकर्म का ।  
जीनवर कहें व्यवहार से यह वर्ण है इस जीव का ॥

उसीप्रकार जीव में कर्मों और नोकर्मों का वर्ण देखकर जीव का यह वर्ण है - इसप्रकार व्यवहार से जिनेन्द्रदेव ने कहा ।

(२९)

गंधरसफासरूबा देहो संठाणमाइया जे य ।  
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ॥  
इस तरह ही रस गंध तन संस्थान आदिक जीव के ।  
व्यवहार से हैं - कहें वे जो जानते परमार्थ को ॥

इसीप्रकार निश्चयनय के जानकारों ने गंध, रस, स्पर्श, रूप, देह, संस्थान आदि को व्यवहार से जीव के कहे हैं ।

(३०)

जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि ।  
जीवस्साजीवस्स य णात्थ विसेसो दु दे कोई ॥  
वर्णादिमय ही जीव हैं तुम यदी मानो इसतरह ।  
तब जीव और अजीव में अन्तर करोग किसतरह ॥

यदि तुम ऐसा मानोगे कि यह सब वर्णादि भाव जीव ही हैं तो तुम्हारे मत में जीव और अजीव में कोई अन्तर नहीं रहता है ।

(३१)

जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो ।  
ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं ॥  
शुध जीव के रस गंध ना अर वर्ण ना स्पर्श ना ।  
यह देह ना जड़रूप ना संस्थान ना संहनन ना ॥

जीव के वर्ण नहीं हैं, रस भी नहीं है, स्पर्श भी नहीं हैं, रूप भी नहीं है, शरीर भी नहीं है, संस्थान भी नहीं है और संहनन भी नहीं है ।

(३२)

जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो ।  
ण पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥  
ना राग है ना द्वेष है ना मोह है इस जीव के ।  
प्रत्यय नहीं है कर्म ना नोकर्म ना इस जीव के ॥

इस जीव के राग भी नहीं है, द्वेष भी नहीं है, मोह भी नहीं है, प्रत्यय भी नहीं है, कर्म भी नहीं है और नोकर्म भी नहीं है ।

(३३)

जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई ।  
 णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि ॥  
 ना वर्ग है ना वर्गणा अर कोई स्पर्धक नहीं ।  
 अर नहीं है अनुभाग के अध्यात्म के स्थान भी ॥  
 जीव के वर्ग नहीं है, वर्गणा नहीं है, स्पर्धक नहीं है, अध्यात्मस्थान  
 नहीं है और अनुभागस्थान नहीं है ।

(३४)

जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा ।  
 णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ॥  
 योग के स्थान नहीं अर बंध के स्थान ना ।  
 उदय के स्थान नहीं अर मार्गणा स्थान ना ॥  
 जीव के योगस्थान नहीं है, बंधस्थान नहीं है, उदयस्थान नहीं है,  
 और मार्गणास्थान नहीं है ।

(३५)

णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा ।  
 णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ॥  
 थिति बंध के स्थान नहीं संक्लेश के स्थान ना ।  
 संयमलब्धि के स्थान ना सुविशुद्धि के स्थान ना ॥  
 जीव के स्थितिबंधस्थान भी नहीं हैं, संक्लेशस्थान भी नहीं है,  
 विशुद्धिस्थान भी नहीं है, और संयमलब्धिस्थान भी नहीं हैं ।

(३६)

णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।  
 जेण दु एदे सव्वे पोग्गलदव्वस्स परिणामा ॥  
 जीव के स्थान नहीं गुणथान के स्थान ना ।  
 क्योंकि ये सब भाव पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं ॥  
 इस जीव के जीवस्थान भी नहीं हैं, और गुणस्थान भी नहीं है;  
 क्योंकि ये सब भाव पुद्गलद्रव्य के परिणाम हैं ।

(३७)

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं ।  
 सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा ॥  
 हैं हेय ये परभाव सब ही क्योंकि ये परद्रव्य हैं ।  
 आदेय अन्तःतत्त्व आतम क्योंकि वह स्वद्रव्य है ॥  
 पूर्वोक्त सम्पूर्ण भाव परद्रव्य हैं, परभाव हैं; इसलिए हेय हैं । अंतस्तत्त्व  
 आत्मा स्वद्रव्य है, अतः उपादेय है ।

(३८)

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।  
 सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा ॥  
 चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है ।  
 जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है ॥  
 भगवान आत्मा में न रस है, न रूप है, न गंध है और न शब्द है;  
 अतः यह आत्मा अव्यक्त है, इन्द्रियग्राह्य नहीं है । हे भव्यो! किसी भी  
 लिंग से ग्रहण न होनेवाले, चेतना गुणवाले एवं अनिर्दिष्ट (न कहे जा  
 सकनेवाले) संस्थान (आकार) वाले इस भगवान आत्मा को जानो ।

(३९)

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूपी ।  
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्त पि ॥  
मैं एक दर्शन-ज्ञानमय नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं ।  
ये अन्य सब परद्रव्य किंचित् मात्र भी मेरे नहीं ॥

मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ एवं सदा ही ज्ञानदर्शनमय अरूपीतत्त्व हूँ। मुझसे भिन्न अन्य समस्त द्रव्य परमाणु मात्र भी मेरे नहीं है। तात्पर्य यह है कि मैं समस्त परद्रव्यों से भिन्न ज्ञानदर्शनस्वरूपी, अरूपी, एक परमशुद्ध तत्त्व हूँ; अन्य परद्रव्यों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

(४०)

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को ।  
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति ॥  
मोहादि मेरे कुछ नहीं मैं एक हूँ उपयोगमय ।  
है मोह-निर्ममता यही वे कहें जो जाने समय ॥

‘मोह मेरा कोई (सम्बन्धी) नहीं है, मैं तो एक उपयोग ही हूँ’ -  
ऐसा जाननेवाले को एवं उनके इसप्रकार के जानने को सिद्धान्त के जानकार मोह से निर्ममत्व जानते हैं, कहते हैं।

(४१)

णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को ।  
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्य वियाणया बेंति ॥  
धर्मादि मेरे कुछ नहीं मैं एक हूँ उपयोगमय ।  
है धर्म-निर्ममता यही वे कहें जो जाने समय ॥

‘ये धर्म आदि द्रव्य मेरे कुछ भी नहीं हैं, मैं तो एक उपयोग ही हूँ’ -  
ऐसा जानने वाले को एवं उनके इसप्रकार के जानने को सिद्धान्त के जानकार धर्मादि द्रव्यों के प्रति निर्ममत्व जानते हैं, कहते हैं।

(४२)

एवं सम्महिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं ।  
उदयं कम्मविवागं च मुयदि तच्चं वियाणंतो ॥  
ज्ञायकस्वाभावी आतमा इसतरह ज्ञानी जानते ।  
निजतत्त्व को पहिचान कर कर्मोदयों को छोड़ते ॥  
इसप्रकार सम्यग्दृष्टी जीव अपने आत्मा को ज्ञायकस्वभावी जानता  
है और तत्त्व को जानता हुआ कर्म के विपाकरूप उदय को छोड़ता है।

(४३)

सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य ।  
सो जिणवरेहिं भणिओ जाण तुमं केवलं णाणं ॥  
सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी आतमा सिध शुद्ध है ।  
यह कहा जिनवर देव ने तुम स्वयं केवलज्ञानमय ॥  
यह भगवान आत्मा सिद्ध है, शुद्ध है, सर्वज्ञ सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है -  
ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। अतः हे आत्मा तू स्वयं को केवल  
ज्ञानस्वरूप ही जान।

(४४)

सत्थं णाणं ण हवदि जम्हा सत्थं ण याणदे किंचि ।  
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा बेंति ॥  
शास्त्र ज्ञान नहीं है क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं ।  
बस इसलिए ही शास्त्र अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
शास्त्र ज्ञान नहीं है, क्योंकि शास्त्र कुछ जानते नहीं हैं; इसलिए शास्त्र  
अन्य हैं और ज्ञान अन्य हैं; ऐसा जिनदेव कहते हैं।



(४५)

सद्दो णाणं ण हवदि जम्हा सद्दो म याणदे किंचि ।  
 तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा बेंति ॥  
 शब्द ज्ञान नहीं है क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही शास्त्र अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 शब्द ज्ञान नहीं है, क्योंकि शब्द कुछ जानते नहीं हैं; इसलिए शब्द  
 अन्य हैं । और ज्ञान अन्य हैं - ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

(४६)

रूवं णाणं ण हवदि जम्हा रूवं ण याणदे किंचि ।  
 तम्हा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा बेंति ॥  
 रूप ज्ञान नहीं है क्योंकि रूप कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही रूप अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 रूप ज्ञान नहीं है, क्योंकि रूप कुछ जानता नहीं हैं; इसलिए रूप  
 अन्य हैं और ज्ञान अन्य हैं; ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

(४७)

वण्णो णाणं ण हवदि जम्हा वण्णो ण याणदे किंचि ।  
 तम्हा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा बेंति ॥  
 वर्ण ज्ञान नहीं है क्योंकि वर्ण कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही वर्ण अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 वर्ण ज्ञान नहीं है, क्योंकि वर्ण कुछ जानता नहीं हैं; इसलिए शास्त्र  
 अन्य हैं और ज्ञान अन्य हैं; ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

(४८)

गंधो णाणं ण हवदि जम्हा गंधो ण याणदे किंचि ।  
 तम्हा अण्णं णाणं अण्णं गंधं जिणा बेंति ॥  
 गंध ज्ञान नहीं है क्योंकि गंध कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही गंध अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 गंध ज्ञान नहीं है, क्योंकि शास्त्र कुछ जानते नहीं हैं; इसलिए गंध  
 अन्य हैं और ज्ञान अन्य हैं; ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

(४९)

ण रसो दु हवदि णाणं जम्हा दु रसो ण याणदे किंचि ।  
 तम्हा अण्णं णाणं रसं च अण्णं जिणा बेंति ॥  
 रस नहीं है, ज्ञान क्योंकि कुछ भी रस जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही अन्य रस अरु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 रस ज्ञान नहीं है, क्योंकि रस कुछ जानता नहीं हैं; इसलिए रस अन्य  
 हैं और ज्ञान अन्य हैं; ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

(५०)

फासो ण हवदि णाणं जम्हा फासो ण याणदे किंचि ।  
 तम्हा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा बेंति ॥  
 स्पर्श ज्ञान नहीं है क्योंकि स्पर्श कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए स्पर्श अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 स्पर्श ज्ञान नहीं है, क्योंकि स्पर्श कुछ जानता नहीं हैं; इसलिए स्पर्श  
 अन्य हैं और ज्ञान अन्य हैं; ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

(५१)

कम्मं णाणं ण हवदि जम्हा कम्मं ण याणदे किंचि ।  
 तम्हा अण्णं णाणं अण्णं कम्मं जिणा बेंति ॥  
 कर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही कर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 कर्म ज्ञान नहीं है, क्योंकि कर्म कुछ जानता नहीं हैं; इसलिए कर्म  
 अन्य हैं और ज्ञान अन्य हैं; ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

(५२)

धम्मो णाणं ण हवदि जम्हा धम्मो ण याणदे किंचि ।  
 तम्हा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा बेंति ॥  
 धर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि धर्म कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही धर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 धर्म (धर्मद्रव्य) ज्ञान नहीं है, क्योंकि अधर्म कुछ जानता नहीं हैं;  
 इसलिए अधर्म अन्य हैं और ज्ञान अन्य हैं; ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

(५३)

णाणमधम्मो ण हवदि जम्हाधम्मो ण याणदे किंचि ।  
 तम्हा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा बेंति ॥  
 अधर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही अधर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 अधर्म (अधर्मद्रव्य) ज्ञान नहीं है, क्योंकि स्पर्श कुछ जानता नहीं  
 हैं; इसलिए अधर्म अन्य हैं और ज्ञान अन्य हैं; ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

(५४)

कालो णाणं ण हवदि जम्हा कालो ण याणदे किंचि ।  
 तम्हा अण्णं णाणं अण्णं कालं जिणा बेंति ॥  
 काल ज्ञान नहीं है क्योंकि स्पर्श कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही काल अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 काल (कालद्रव्य) नहीं है, क्योंकि स्पर्श कुछ जानता नहीं हैं; इसलिए  
 काल अन्य हैं और ज्ञान अन्य हैं; ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

(५५)

आयासं पि ण णाणं जम्हायासं ण याणदे किंचि ।  
 तम्हायासं अण्णं अण्णं णाणं जिणा बेंति ॥  
 आकाश ज्ञान नहीं है क्योंकि आकाश कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए आकाश अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 आकाश ज्ञान नहीं है, क्योंकि आकाश कुछ जानता नहीं हैं; इसलिए  
 आकाश अन्य हैं और ज्ञान अन्य हैं; ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

(५६)

णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जम्हा ।  
 तम्हा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ॥  
 अध्यवसान ज्ञान नहीं है क्योंकि वे अचेतन जिन कहे ।  
 इसलिए अध्यवसान अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥  
 अध्यवसान ज्ञान नहीं है, क्योंकि अध्यवसान अचेतन हैं; इसलिए  
 अध्यवसान अन्य हैं और ज्ञान अन्य है ।

(५७)

जम्हा जाणदि णिच्चं तम्हा जीवो दु जाणगो णाणी ।  
 णाणं च जाणयादो अब्बदिरित्तं मुणेयव्वं ॥  
 नित्य जाने जीव बस इसलिए ज्ञायकभाव है ।  
 है ज्ञान अव्यतिरिक्त ज्ञायकभाव से यह जानना ॥

चूँकि जीव निरन्तर जानता है, अतः यह ज्ञायक आत्मा ज्ञानी है  
 और ज्ञान ज्ञायक से अव्यतिरिक्त है, अभिन्न हैं; - ऐसा जानना चाहिए ।

(५८)

णाणं सम्मादिट्ठिं दु सुत्तमंगपुव्वगयं ।  
 धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा ॥  
 ज्ञान ही समदृष्टि संयम सूत्र पूर्वगतांग भी ।  
 सद्धर्म और अधर्म दीक्षा ज्ञान हैं - यह बुध कहें ॥

ज्ञानीजन ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि (सम्यग्दर्शन) ज्ञान को ही संयम,  
 ज्ञान को ही अंगपूर्वगत सूत्र एवं ज्ञान को ही धर्म-अधर्म तथा दीक्षा  
 मानते हैं ।

(५९)

णाणगुणेण विहीणा एवं तु पदं बहु वि ण लहंते ।  
 तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं ॥  
 इस ज्ञानगुण के बिना जन प्राप्ती न शिवपद की करें ।  
 यदि चाहते हो मुक्त होना ज्ञान का आश्रय करो ॥

ज्ञानगुण से रहित जन अनेक प्रकार के कर्मों के करते हुए भी इस  
 ज्ञानस्वरूप पद को प्राप्त नहीं करते । इसलिए हे भव्यजन! यदि तुम कर्मों से  
 सर्वथा मुक्ति चाहते हो तो नियत इस ज्ञान गुण को ही ग्रहण करो ।

(६०)

एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि ।  
 एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥  
 इस ज्ञान में ही रत रहो सन्तुष्ट नित इसमें रहो ।  
 बस तृप्त भी इसमें रहो तो परमसुख को प्राप्त हो ॥

हे भव्यजन! तुम इस ज्ञान में रत रहो, इसमें ही नित्य सन्तुष्ट रहो और  
 इसमें ही तृप्त रहो; तुम्हें उत्तम सुख की अवश्य प्राप्ति होगी ।

(६१)

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।  
 तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥  
 परमार्थ है है ज्ञानमय है समय शुध मुनि केवली ।  
 इसमें रहें थिर अचल जो निर्वाण पावें वे मुनी ॥

निश्चय से जो परमार्थ है, समय है, शुद्ध है, केवली है, मुनि है,  
 ज्ञानी है; उस आत्मा के स्वभाव में स्थित मुनि ही निर्वाण को प्राप्त  
 करते हैं ।

(६२)

आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च ।  
 आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो ॥  
 निज आतमा ही ज्ञान है दर्शन चरित भी आतमा ।  
 अर योग संवर और प्रत्याख्यान भी है आतमा ॥

निश्चय से मेरा आत्मा ही ज्ञान है, मेरा आत्मा ही दर्शन और  
 चारित्र है, मेरा आत्मा ही प्रत्याख्यान है और मेरा आत्मा ही संवर और  
 योग हैं ।

(६३)

णिगंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मक्को ।  
 णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा ॥  
 निर्ग्रथ है नीराग है निशल्य है निर्दोष है ।  
 निर्मान-मद यह आत्मा निष्काम है निष्क्रोध है ॥

भगवान् आत्मा परिग्रह से रहित है, राग से रहित है, माया, मिथ्यात्व और निदान शल्यों से रहित है, सर्व दोषों से मुक्त है, काम-क्रोध रहित है और मद-मान से भी रहित है ।

(६४)

णिदंडो णिदंडो णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो ।  
 णीरागो णिदोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा ॥  
 निर्दण्ड है निर्द्वन्द्व है यह निरालम्बी आत्मा ।  
 निर्देह है निर्मूढ है निर्भयी निर्मम आत्मा ॥

भगवान् आत्मा हिंसादि पापों रूप दण्ड से रहित है, मानसिक द्वन्द्वों से रहित है, ममत्व परिणाम से रहित है, शरीर से रहित है, आलम्बन से रहित है, राग से रहित है, द्वेष से रहित है, मूढ़ता और भय से भी रहित है ।

(६५)

केवलणाणसहायो केवलदंसणसहावसुहमइओ ।  
 केवलसत्तिसहावो सो हं इदि चिंतए णाणी ॥  
 ज्ञानी विचारे इसतरह यह चिन्तवन उनका सदा ।  
 केवल्यदर्शन ज्ञान सुख शक्तिस्वभावी हूँ सदा ॥

ज्ञानी ऐसा चिन्तवन करते हैं कि मैं तो वह हूँ, जो केवलज्ञानस्वभावी है, केवलदर्शनस्वभावी है, सुखमय और केवलशक्तिस्वभावी है ।

(६६)

णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइ ।  
 जाणदि पस्सदि सव्वं सो हं इदि चिंतए णाणी ॥  
 ज्ञानी विचारे देखे-जाने जो सभी को मैं वही ।  
 जो ना ग्रहे परभाव को निजभाव को छोड़े नहीं ॥  
 ज्ञानी ऐसा चिन्तवन करते हैं कि मैं तो वह हूँ, जो निजभाव को कभी छोड़ता नहीं है, परभाव को ग्रहण नहीं करता है और सबको जानता-देखता है ।

(६७)

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति ।  
 जरमरणजम्ममुक्का अट्टगुणालंकिया जेण ॥  
 गुण आठ से हैं अलंकृत अर जन्म मरण जरा नहीं ।  
 हैं सिद्ध जैसे जीव त्यों भवलीन संसारी वही ॥  
 जिसप्रकार सिद्ध भगवान् जन्म-जरा-मृत्यु से रहित और आठ गुणों से अलंकृत हैं, उसीप्रकार भवलीन संसारी जीव भी जन्म-जरा-मृत्यु से रहित एवं आठ गुणों से अलंकृत हैं ।

(६८)

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा ।  
 जह लोयगो सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया ॥  
 शुद्ध अविनाशी अतीन्द्रिय अदेह निर्मल सिद्ध ज्यों ।  
 लोकाग्र में जैसे विराजे जीव हैं भवलीन त्यों ॥  
 जिसप्रकार लोकाग्र में सिद्धभगवान् अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा रूप से विराजमान हैं; उसीप्रकार सभी संसारी जीवों को भी अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय निर्मल एवं विशुद्धात्मा जानना चाहिए ।

(६९)

जीवे कम्मं बद्धं पुट्टं चेदि ववहारणयभणिदं ।  
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्टं हवदि कम्मं ॥  
कर्म से आबद्ध जिय यह कथन है व्यवहार का ।  
पर कर्म से ना बद्ध जिय यह कथन है परमार्थ का ॥

कर्म जीव से जीव कर्मों से बंधा हुआ है, स्पर्शित है; - यह व्यवहारनय का कथन है और कर्म जीव से या जीव कर्मों से जीव अबद्ध है, अस्पर्शित है; यह शुद्धनय का कथन है ।

(७०)

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं ।  
पक्खादिव्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥  
अबद्ध है या बद्ध है जिय यह सभी नयपक्ष हैं ।  
नयपक्ष से अतिक्रान्त जो वह ही समय का सार है ॥

जीव कर्मों से बद्ध है या अबद्ध है - यह तो नयपक्ष है; किन्तु जो नयपक्ष से अतिक्रान्त है, वह समयसार है ।

(७१)

कह सो धिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु धिप्पदे अप्पा ।  
जह पण्णाइ विभत्तो तह पण्णाएव घेत्तव्वो ॥  
जिस भाँति प्रज्ञा छैनि से पर से विभक्त किया इसे ।  
उस भाँति प्रज्ञा छैनि से ही अरे ग्रहण करो इसे ॥

प्रश्न - भगवान आत्मा को किसप्रकार ग्रहण किया जा?

उत्तर - भगवान आत्मा का ग्रहण बुद्धिरूपी छैनी से किया जाना चाहिए । जिसप्रकार बुद्धिरूपी छैनी से भगवान आत्मा को पर पदार्थों से भिन्न किया है उसीप्रकार बुद्धिरूपी छैनी से ही भगवान आत्मा को ग्रहण करना चाहिए ।

(७२)

पण्णाए धित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।  
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णायव्वा ॥  
इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो चेतना ।  
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥

प्रज्ञा (बुद्धि) से इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए कि निश्चय से मैं चेतनास्वरूप हूँ चेतनेवाला हूँ । शेष जो भाव हैं, वे मुझसे भिन्न हैं, पर हैं; - ऐसा जानना चाहिए ।

(७३)

पण्णाए धित्तव्वो जो द्दुठा सो अहं तु णिच्छयदो ।  
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ॥  
इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो देखता ।  
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥

प्रज्ञा से इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए कि निश्चय से मैं देखनेवाला हूँ, दृष्टा हूँ । शेष जो भाव हैं, वे मुझ से भिन्न हैं, पर हैं; - ऐसा जानना चाहिए ।

(७४)

पण्णाए धित्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो ।  
अवसेसा से भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा ॥  
इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो जानता ।  
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥

प्रज्ञा से इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए कि निश्चय से मैं जाननेवाला हूँ, ज्ञाता हूँ । शेष जो भाव हैं, वे मुझसे भिन्न हैं, ऐसा जानना चाहिए ।

(७५)

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्भि ।  
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ॥  
ना घट करे ना पट करे ना अन्य द्रव्यों को करे ।  
कर्त्ता कहा तत्तूपपरिणत योग अर उपयोग का ॥

जीव घट को नहीं करता, पट को नहीं करता, शेष अन्य द्रव्यों को भी नहीं करता; परन्तु जीव के योग और उपयोग अवश्य घटादिक की उत्पत्ति में निमित्त है; उन योग और उपयोग का कर्त्ता जीव होता है ।

(७६)

ववहारेण तु आदा करेदि घडपडरधाणि दव्वाणि ।  
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ॥  
व्यवहार से यह आत्मा घट पट रथादिक द्रव्य का ।  
इन्द्रियों का कर्म का नोकर्म का कर्त्ता कहा ॥

व्यवहारनय से यह आत्मा घट-पट-रथ आदि वस्तुओं को, इन्द्रियों को, अनेक प्रकार के क्रोधादि द्रव्यकर्मों को और शरीरादि नोकर्मों को करता है ।

(७७)

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।  
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ॥  
परद्रव्यमय हो जाय यदि परद्रव्य में कुछ भी करें ।  
परद्रव्यमय होता नहीं बस इसलिए कर्त्ता नहीं ॥

यदि आत्मा परद्रव्यों को करे तो नियम से तन्मय अर्थात् परद्रव्यमय हो जावे, किन्तु आत्मा तन्मय नहीं है, परद्रव्यमय नहीं है; अतः वह उनका कर्त्ता भी नहीं है ।

(७८)

जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे ।  
जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता ॥  
ना घट करे ना पट करे ना अन्य द्रव्यों को करे ।  
कर्त्ता कहा तत्तूपपरिणत योग अर उपयोग का ॥

जीव घट को नहीं करता, पट को नहीं करता, शेष अन्य द्रव्यों को भी नहीं करता; परन्तु जीव के योग और उपयोग अवश्य घटादिक की उत्पत्ति में निमित्त है; उन योग और उपयोग का कर्त्ता जीव होता है ।

(७९)

जे पोग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा ।  
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥  
ज्ञानावरण आदिक जु पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं ।  
उनको करे ना आतमा जो जानते वे ज्ञानि हैं ॥

ज्ञानावरणादि कर्म जो कि पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं; उन्हें जो आत्मा नहीं करता है, परन्तु जानता है, वह आत्मा ज्ञानी है ।

(८०)

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता ।  
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा ॥  
निजकृत शुभाशुभ का कर्त्ता कहा है आतमा ।  
वे भाव उसके कर्म हैं वेदक है उनका आतमा ॥

आत्मा जिन शुभाशुभ भावों को करता है, वह उन शुभाशुभ भावों का कर्त्ता होता है और वे शुभाशुभ भाव उसके कर्म होते हैं । वह आत्मा उन भावों का भोक्ता भी होता है ।

(८१)

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे ।  
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥  
जब संक्रमण ना करे कोई द्रव्य पर गुण द्रव्य में ।  
तब करे कैसे परिणमन इक द्रव्य परगुण द्रव्य में ॥

जो वस्तु जिस द्रव्य और जिस गुण में वर्तती है, वह वस्तु अन्य द्रव्य तथा गुण में संक्रमित नहीं होती । अन्य रूप में संक्रमित न होती हुई वह वस्तु अन्य वस्तु को परिणमन कैसे करा सकती है?

(८२)

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पोग्गलमयम्हि कम्मम्हि ।  
तं उभयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता ॥  
कुछ भी करे ना जीव पुद्गल कर्म के गुण द्रव्य में ।  
जब उभय का कर्ता नहीं तब किस तरह कर्ता करे? ॥

यह आत्मा पुद्गलमय कर्म के द्रव्य और गुणों को नहीं करता । उन दोनों को न करता हुआ वह पुद्गलकर्म का कर्ता कैसे हो सकता है?

(८३)

जीवम्हि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं ।  
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमेत्तेण ॥  
बंध का जो हेतु उस परिणाम को लख जीव में ।  
करम कीने जीव ने बस कह दिया उपचार से ॥

जीव के निमित्तभूत होने पर कर्मबंध का परिणाम होता हुआ देखकर जीव ने कर्म किए - इसप्रकार उपचार मात्र से कह दिया जाता है ।

(८४)

जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदं ति जंपदे लोगो ।  
ववहारेण तह कदं णाणावरणादि जीवेण ॥  
रण में लड़ें भट पर कहे जग युद्ध राजा ने किया ।  
बस उसतरह द्रवकर्म आतम ने किए व्यवहार से ॥

जिसप्रकार युद्ध योद्धाओं द्वारा किये जाने पर भी 'युद्ध राजा ने किया' - इसप्रकार व्यवहार से कह दिया जाता है; उसीप्रकार ज्ञानावरणादि कर्म जीव ने किए - यह व्यवहार से कहा जाता है ।

(८५)

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य ।  
आदा पोग्गलदव्वं ववहारणयस्य वत्तव्वं ॥  
ग्रहे बाँधे परिणमावे करे या पैदा करे ।  
पुद्गल दरव को आतमा व्यवहारनय का कथन है ॥

यह आत्मा पुद्गलद्रव्य को उत्पन्न करता है, बाँधता है, परिणमाता है और ग्रहण करता है; - यह सब व्यवहारनय का कथन है ।

(८६)

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो ।  
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ॥  
गुण-दोष उत्पादक कहा ज्यों भूप को व्यवहार से ।  
त्यों जीव पुद्गल द्रव्य का कर्ता कहा व्यवहार से ॥

जिसप्रकार व्यवहार से राजा को प्रजा के गुणों और दोषों का उत्पादक कहा जाता है; उसीप्रकार जीव को पुद्गल द्रव्य के द्रव्य और गुणों का उत्पादक व्यवहार से कहा गया है ।

(८७)

जं कुणुदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।  
 णाणिस्स स णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ॥  
 जो भाव आतम करे वह उस कर्म का कर्त्ता बने ।  
 ज्ञानियों के ज्ञानमय अज्ञानि के अज्ञानमय ॥

आत्मा जिस भाव को करता है, वह उस भावरूप कर्म का कर्त्ता होता है। इसप्रकार ज्ञानी ज्ञानमय भावों का और अज्ञानी अज्ञानमय भावों का कर्त्ता होता है।

(८८)

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो ।  
 जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ॥  
 ज्ञानमय परिणाम से परिणाम हों सब ज्ञानमय ।  
 बस इसलिए सद्ज्ञानियों के भाव हों सद्ज्ञानमय ॥

चूँकि ज्ञानमय भावों में से ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होते हैं; इसलिए ज्ञानियों के समस्त भाव ज्ञानमय ही होते हैं।

(८९)

अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो ।  
 जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणामिस्स ॥  
 अज्ञानमय परिणाम से परिणाम हों अज्ञानमय ।  
 बस इसलिए अज्ञानियों के भाव हों अज्ञानमय ॥

अज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होते हैं; इसलिए अज्ञानियों के समस्त भाव अज्ञानमय ही होते हैं।

(९०)

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।  
 वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥  
 हे भव्यजन! तुम जान लो परमार्थ से यह आतमा ।  
 निजभाव को करता तथा निजभाव को ही भोगता ॥

निश्चयनय का यह मत है कि आत्मा अपने को ही करता है और अपने को ही भोगता है; - ऐसा जानो।

(९१)

तम्हा दु जो विसुद्धो चेदा सो णेव गेण्हेवे किंचि ।  
 णेव विमुंचदि किंचि वि जीवाजीवाण दव्वाणं ॥  
 इसलिए यह शुद्धात्मा परजीव और अजीव से ।  
 कुछ भी ग्रहण करता नहीं कुछ भी नहीं है छोड़ता ॥

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह शुद्धात्मा जीव और अजीव परद्रव्यों में से कुछ भी ग्रहण नहीं करता और न उन्हें छोड़ता ही है।

(९२)

भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविशुद्धणिम्मलं चेव ।  
 लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छह सासयं सुक्खं ॥  
 चतुर्गति से मुक्त हो यदि चाहते हो सुख सदा ।  
 तो करो निर्मलभाव से निज आतमा की भावना ॥

यदि चतुर्गति परिभ्रमण से छूटकर शाश्वत सुख प्राप्त करना चाहते हो तो सुविशुद्ध निर्मल भगवान आत्मा की शुद्धभाव से भावना करो।



(९३)

आदम्हि दव्वभावे अपदे मोत्तूण गिण्ह तह णियदं ।  
 थिरमेगमिमं भावं उवलब्भंतं सहावेण ॥  
 स्वानुभूती गम्य है जो नियत थिर निजभाव ही ।  
 अपद पद सब छोड़ ग्रह वह एक नित्यस्वभाव ही ॥  
 हे आत्मन! अपदभूत द्रव्यभावों को छोड़कर स्थिर, नियत, एक  
 निजभाव को जैसा का तैसा ग्रहण कर ।

(९४)

जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहाओ य चेयणासहिओ ।  
 सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिम्मित्तो ॥  
 ज्ञायकस्वभावी चेतनामय जीव जिनवर ने कहा ।  
 जानना उस जीव को ही कर्म क्षय का हेतु भी ॥  
 जिनेन्द्र भगवान ने जीव का स्वरूप ज्ञानस्वभावी एवं चेतनासहित  
 कहा है । यही ज्ञानस्वभावी चेतन आत्मा कर्म क्षय का कारण है ।

(९५)

अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो ।  
 संसारतरणहेदू धम्मो त्ति जिणेहि णिद्धिद्वं ॥  
 रागादि विरहित आतमा रत आत्मा ही धर्म है ।  
 भव तरणतारण धर्म यह जिनवर कथन का मर्म है ॥  
 रागादि सम्पूर्ण दोषों से रहित आत्मा में आत्मा का रत होना ही  
 संसार से पार करनेवाला धर्म है - ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ।

(९६)

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणणमओ ।  
 लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥  
 ज्ञान-दर्शनमय निजातम को सदा जो ध्यावते ।  
 अत्यल्पकाल स्वकाल में वे सर्व कर्म विमुक्त हों ॥  
 आत्मा का ध्यान करता हुआ वह आत्मा दर्शन-ज्ञानमय और अपने  
 से अनन्यमय होता हुआ अल्पकाल में ही कर्मों से रहित आत्मा को प्राप्त  
 करता है ।

(९७)

णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को ।  
 इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाणं हवदि झादा ॥  
 ज्ञान-दर्शनमय निजातम को सदा जो ध्यावते ।  
 अत्यल्पकाल स्वकाल में वे सर्व कर्म विमुक्त हों ॥  
 आत्मा का ध्यान करता हुआ वह आत्मा दर्शन-ज्ञानमय और अपने  
 से अनन्यमय होता हुआ अल्पकाल में ही कर्मों से रहित आत्मा को प्राप्त  
 करता है ।

(९८)

एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं ।  
 ध्रुवमचलमणालंबं मण्णेऽहं अप्पगं सुद्धं ॥  
 इस तरह मैं आतमा को ज्ञानमय दर्शनमयी ।  
 ध्रुव अचल अवलंबन रहित इन्द्रियरहित शुध मानता ॥  
 इसप्रकार मैं अपने आत्मा को ज्ञानात्मक, दर्शनभूत, अतीन्द्रिय  
 महापदार्थ, ध्रुव, अचल, निरालंब और शुद्ध मानता हूँ ।

(९९)

देहा वा दविणा वा सुहदुक्खा वाध सत्तुमित्तजणा ।  
 जीवस्स ण संति धुवा धुवोवओगप्पगो अप्पा ॥  
 अरि-मित्रजन धन-धान्य सुख-दुख देह कुछ भी ध्रुव नहीं ।  
 इस जीव के ध्रुव एक ही उपयोगमय यह आत्मा ॥

शरीर, धन, सुख-दुख अथवा शत्रु-मित्रजन जीव के ये सभी संयोग ध्रुव नहीं है अर्थात् सदा के साथी नहीं है, अस्थिर हैं, विनाशीक हैं; अविनाशी ध्रुव तो एक उपयोगात्मक आत्मा ही है ।

(१००)

जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पणं विसुद्धप्पा ।  
 सागारोऽणागारो खवेदि सो मोहदुग्गंठिं ॥  
 यह जान जो शुद्धात्मा ध्यावे सदा परमात्मा ।  
 दुठ मोह की दुर्ग्रन्थि का भेदन करें वे आत्मा ॥

जो ऐसा जानकर विशुद्धात्मा होता हुआ परम आत्मा का ध्यान करता है, वह साकार हो या अनकार मोह दुर्ग्रन्थि का क्षय करता है ।

(१०१)

एवं जिणा जिणिंदा सिद्धा मग्गं समुट्ठिदा समणा ।  
 जादा णमोत्थु तेसिं तस्स य णिव्वाणमग्गस्स ॥  
 निर्वाण पाया इसी मग से श्रमण जिन जिनदेव ने ।  
 निर्वाण अर निर्वाण मग को नमन बारंबार हो ॥

जिन, जिनेन्द्र और श्रमणजन इसी मार्ग से सिद्धदशा को प्राप्त हुए हैं; उन निर्वाणगत सिद्धों को एवं उस निर्वाणमार्ग को बारंबार नमस्कार हो ।